

वास्तुशास्त्र में प्रतिमालक्षण

आकाश दीप*

सारांश -

वास्तुशास्त्र भारतीय सभ्यता की एक प्राचीन विद्या है, जिसका उद्देश्य मानव जीवन को प्राकृतिक और आध्यात्मिक शक्तियों के साथ सामंजस्य में लाना है। यह विद्या न केवल भवन निर्माण के सिद्धांतों पर आधारित है, बल्कि इसमें प्रतिमा निर्माण, देवालय योजना और मूर्तियों के स्थापना से सम्बंधित गहन नियमों का भी समावेश है। प्रतिमालक्षणम् वास्तुशास्त्र का एक महत्वपूर्ण अंग है, जिसमें प्रतिमा निर्माण के विशेष मापदंडों और नियमों का वर्णन मिलता है। यह नियम प्रतिमा के विभिन्न अंगों के अनुपात, उसकी मुद्रा, सामग्री और उसकी स्थापना की दिशा से सम्बंधित होते हैं। प्राचीन ग्रंथों जैसे कि "मयमतम्", "मानसार", "समरांगणसूत्रधार" और "कौशिकसूत्र" में प्रतिमा निर्माण के सिद्धांतों का विस्तृत वर्णन मिलता है। वास्तुशास्त्र के अनुसार, प्रतिमा का निर्माण पूर्णतः सटीक और संतुलित होना चाहिए, ताकि वह धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से फलप्रद हो सके।

कुञ्जी शब्द – वास्तुशास्त्र, भारतीय सभ्यता, प्राचीन विद्या, प्राकृतिक, आध्यात्मिक. भवन, प्रतिमा, देवालय, प्रतिमालक्षणम्, वास्तुशास्त्र, मयमतम्, मानसार, समरांगणसूत्रधार, कौशिकसूत्र।

प्रस्तावना –

"मयमतम्" में प्रतिमा निर्माण के लिए बताया गया है कि "प्रतिमाया लक्ष्यम् यदा देवतारूपिणः, अङ्गविन्यासं सम्पूर्णं करोति।"[1] अर्थात् जब कोई प्रतिमा देवता का रूप धारण

करती है, तो उसके प्रत्येक अंग का विन्यास पूर्ण और संतुलित होना चाहिए। प्रतिमा निर्माण में जिस प्रकार देवता की भावना और रूप की अभिव्यक्ति की जाती है, वह इस विन्यास पर निर्भर करता है। "मानसार" ग्रंथ में प्रतिमा के विभिन्न अंगों के अनुपात का वर्णन किया गया है। यह अनुपात देवता की शक्ति और महत्ता के अनुसार निर्धारित होता है। उदाहरणस्वरूप, "मानसार" के अनुसार "शिरोभागः प्रतिमायाः सर्वदा ऊर्ध्वतः १"[2] अर्थात् प्रतिमा के शिरोभाग को ऊर्ध्व दिशा में रखने का निर्देश दिया गया है, जिससे प्रतिमा की ऊँचाई संतुलित दिखे और उसकी देवमूर्ति को श्रेष्ठता प्रदान हो। वास्तुशास्त्र में प्रतिमा निर्माण में उसकी ऊँचाई का महत्त्व भी वर्णित है। "समरांगणसूत्रधार" में इस संदर्भ में कहा गया है कि "प्रतिमाया यथोचितम् उन्नतं भवेत्"[3] यह श्लोक प्रतिमा की ऊँचाई को निर्धारित करने का निर्देश देता है, ताकि उसका निर्माण उसकी प्रतिष्ठा के अनुसार हो और देवता की महिमा को दर्शा सके। प्रतिमा की ऊँचाई न केवल उसकी भव्यता को प्रदर्शित करती है, बल्कि उसकी धार्मिक महत्ता को भी व्यक्त करती है। प्रतिमा के अंगों का सही अनुपात होना अत्यन्त आवश्यक है। "मयमतम्" में बताया गया है कि "अङ्गुलयः परिमाणं प्रतिमायाः अङ्गभागेषु कर्तव्यम्"[4] इस श्लोक के अनुसार, प्रतिमा के प्रत्येक अंग का मापन अँगुल के आधार पर किया जाना चाहिए। यह अँगुल मापन शास्त्रीय रूप से मान्य होता है और यह सुनिश्चित करता है कि प्रतिमा का हर अंग संतुलित और सुन्दर दिखाई दे।

प्रतिमा के निर्माण में उसकी मुद्रा का भी विशेष महत्त्व है। "कौशिकसूत्र" में प्रतिमा की मुद्रा के बारे में बताया गया है कि "प्रतिमाया हस्तयोः शक्तिं, चक्षुषोः करुणां, मुखात् प्रसादं दर्शयेत् १"[5] अर्थात् प्रतिमा के हाथों से शक्ति का, आँखों से करुणा का, और मुख से प्रसाद का भाव दर्शाने का निर्देश दिया गया है। यह मुद्रा प्रतिमा के निर्माण में उसकी आध्यात्मिक महत्ता को दर्शाती है और श्रद्धालुओं के मन में विशेष भाव उत्पन्न करती है।

प्रतिमा निर्माण के लिए उपयोग की जाने वाली सामग्री का भी वास्तुशास्त्र में विस्तृत वर्णन है। "मयमतम्" में कहा गया है कि "प्रतिमां शिलया, धातुभिश्च, काष्ठेन मृत्तिकया निर्मितव्या १"[6] अर्थात् प्रतिमा निर्माण के लिए शिला, धातु, काष्ठ, और मृत्तिका के उपयोग का निर्देश दिया गया है। विभिन्न प्रकार की सामग्रियों से निर्मित प्रतिमाओं का आध्यात्मिक महत्त्व होता है और यह देवता के रूप और स्वभाव के अनुसार होती है। वास्तुशास्त्र में प्रतिमा की दिशा और उसकी स्थापना का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। "समरांगणसूत्रधार" में प्रतिमा स्थापना के बारे में कहा गया है - "प्रतिमां पूर्वोत्तरेण प्रतिष्ठाप्य, दक्षिणे वा प्रतिष्ठिता शान्तिं ददाति"[7] इस श्लोक में प्रतिमा की स्थापना के लिए पूर्वोत्तर या दक्षिण दिशा का उल्लेख किया गया है। यह दिशा शुभ मानी जाती है और इससे वास्तु में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है। प्रतिमा की स्थापना से पूर्व उसकी प्रतिष्ठा का अनुष्ठान करना आवश्यक होता है। "मयमतम्" में इस अनुष्ठान का विस्तृत वर्णन है - "प्रतिष्ठया

देवता प्रतिमायां प्रविष्टं मन्यते"[8] इस श्लोक में यह बताया गया है कि प्रतिष्ठा अनुष्ठान के द्वारा देवता प्रतिमा में प्रवेश करते हैं और वह साधारण मूर्ति नहीं रहती, बल्कि देवता का प्रतीक बन जाती है। प्रतिष्ठा अनुष्ठान वैदिक मंत्रों और यज्ञों द्वारा सम्पन्न किया जाता है, जिससे प्रतिमा की धार्मिक महत्ता बढ़ती है। वास्तुशास्त्र में प्रतिमा निर्माण के साथ-साथ उसकी देखभाल और संरक्षण का भी उल्लेख है। "समरांगणसूत्रधार" में कहा गया है कि "प्रतिमायाः संरक्षणं सदैव कर्तव्यम्, अन्यथा दोषः"[9] अर्थात् प्रतिमा के संरक्षण की महत्ता का वर्णन किया गया है। यदि प्रतिमा की उचित देखभाल न की जाए, तो वह दोषपूर्ण हो जाती है और उसका धार्मिक प्रभाव समाप्त हो जाता है। "मयमतम्" और "मानसार" जैसे ग्रंथों में प्रतिमा के निर्माण के बाद उसके पूजा-पाठ के नियमों का भी उल्लेख किया गया है। "मानसार" में प्रतिमा पूजन के विषय में कहा गया है - "प्रतिमां सदा पूजयेत्, तेन भवन्ति शुभफलानि"[10] अर्थात् प्रतिमा की नियमित पूजा का निर्देश दिया गया है, जिससे शुभ फल प्राप्त होते हैं और भक्त की मनोकामनाएं पूर्ण होती हैं।

वास्तुशास्त्र के अनुसार, प्रतिमा निर्माण का उद्देश्य न केवल देवताओं की उपासना को सशक्त बनाना है, बल्कि उसके माध्यम से समाज में सकारात्मक ऊर्जा का संचार करना भी है। "समरांगणसूत्रधार" में प्रतिमा के निर्माण और उसकी प्रतिष्ठा का आध्यात्मिक और सामाजिक महत्त्व स्पष्ट किया गया है - "प्रतिमायां प्रतिष्ठायां यज्ञकर्माणि कृत्वा, देवे प्रतिष्ठिते भवति।"[11] इस श्लोक में कहा गया है कि जब प्रतिमा की प्रतिष्ठा यज्ञ और वैदिक मंत्रों द्वारा की जाती है, तब वह देवता का स्थान ग्रहण करती है और उसका सामाजिक और धार्मिक महत्त्व बढ़ जाता है।

वास्तुशास्त्र में प्रतिमा निर्माण की प्रक्रिया को वैज्ञानिक और आध्यात्मिक दृष्टि से देखा गया है। "मयमतम्" में प्रतिमा निर्माण के सिद्धांतों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि "प्रतिमाया रचनाविधिः शास्त्रसम्मतः, तस्य फलप्रदत्वं विद्यमानम्"[12] अर्थात् प्रतिमा निर्माण की विधि को शास्त्र सम्मत बताया गया है और यह कहा गया है कि यह विधि यदि सही ढंग से अपनाई जाए, तो यह फलप्रद होती है और प्रतिमा की पूजा करने से धार्मिक और आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होते हैं।

वास्तुशास्त्र में प्रतिमालक्षणम् का अध्ययन न केवल धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, बल्कि यह शिल्पकला और वास्तुकला के वैज्ञानिक आधार को भी प्रकट करता है। "मानसार" जैसे ग्रंथों में प्रतिमा के निर्माण के लिए सुझाए गए नियम आज भी मूर्तिकला और मंदिर वास्तुकला में प्रचलित हैं, जो वास्तुशास्त्र के शाश्वत महत्त्व को दर्शाते हैं। वास्तुशास्त्र भारतीय सभ्यता की एक महत्त्वपूर्ण विद्या है, जिसमें वास्तु का शास्त्रीय और वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है। वास्तुशास्त्र के अंतर्गत भवन निर्माण, भू-संरचना, नगर योजना, तथा प्रतिमा निर्माण आदि के सिद्धांतों का उल्लेख मिलता है। इसमें प्रतिमा निर्माण का विशिष्ट स्थान है, क्योंकि प्रतिमा का सही आकार, अनुपात और स्थिति वास्तु के अनुसार निर्धारित होती है।

वास्तुशास्त्र में प्रतिमालक्षणम् का विस्तृत वर्णन है, जहाँ प्रतिमा के निर्माण के विभिन्न सिद्धांतों का उल्लेख किया गया है। यह प्रतिमाएं धार्मिक स्थलों, देवालयों और वास्तुशास्त्र के अन्य निर्माणों में प्रतिष्ठापित की जाती हैं। प्रतिमालक्षण का अध्ययन मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है -

१. प्रतिमा की ऊँचाई और आकार (प्रतिमाया ऊर्ध्वतत्त्वम्)- वास्तुशास्त्र के अनुसार, प्रतिमा की ऊँचाई और आकार विशेष महत्त्व रखते हैं। प्रतिमा की ऊँचाई का निर्धारण न केवल शिल्पकला के आधार पर होता है, बल्कि देवता की महिमा और शक्ति के आधार पर भी होता है। "मयमतम्" और "मानसार" जैसे प्राचीन वास्तुशास्त्र ग्रंथों में प्रतिमा की ऊँचाई का विशेष उल्लेख किया गया है। उदाहरणार्थ, "मयमतम्" के अनुसार -"प्रतिमाया ऊर्ध्वभागः शिरः कर्तव्यम्"[13] अर्थात्, प्रतिमा के ऊर्ध्व भाग का निर्माण शिरोभाग से किया जाना चाहिए और यह अन्य अंगों की तुलना में थोड़ा ऊँचा होना चाहिए।

२. प्रतिमा के अंगों का अनुपात (अङ्गविन्यासः)- प्रतिमा निर्माण में अंगों का अनुपात अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इसे "अङ्गविन्यास" कहते हैं। शास्त्रों के अनुसार, प्रतिमा के प्रत्येक अंग का एक विशेष अनुपात होता है, जिसे "शिल्पशास्त्र" में विस्तार से वर्णित किया गया है। "मानसार" में प्रतिमा के अंगों के अनुपात का उल्लेख इस प्रकार मिलता है- "प्रतिमाया शिरः, बाहु, उदर, पादाः समविन्यासाः"[14] अर्थात्, प्रतिमा के शिर, बाहु, उदर और पादों का विन्यास समान अनुपात में होना चाहिए, जिससे प्रतिमा संतुलित और सुन्दर लगे।

३. प्रतिमा का मुद्रा और अभिव्यक्ति (मुद्रा व भावः)- वास्तुशास्त्र के अनुसार, प्रतिमा के हाथ, आँखें, मुख, और शरीर के अन्य अंगों की मुद्रा का विशेष महत्त्व होता है। यह मुद्रा देवता की शक्ति, भाव और उनकी विशेषताओं को व्यक्त करती है। "कौशिकसूत्र" में प्रतिमा की मुद्राओं के बारे में वर्णन किया गया है -"हस्ताभ्यां शक्तिः, चक्षुभ्यां करुणा, वदनात् प्रसादो दर्शयेत्"[15] अर्थात्, प्रतिमा के हाथों से शक्ति, आँखों से करुणा, और मुख से प्रसाद का भाव प्रदर्शित होना चाहिए। यह प्रतिमा के निर्माण में उसका आध्यात्मिक महत्त्व बढ़ाता है और श्रद्धालुओं के मन में देवता के प्रति विशेष भाव उत्पन्न करता है।

वास्तुशास्त्र में प्रतिमा की स्थापना की दिशा और स्थान का भी विशेष महत्त्व है। "समरांगणसूत्रधार" और "मयमतम्" में इसका विस्तृत वर्णन मिलता है। "समरांगणसूत्रधार" में कहा गया है कि प्रतिमा की स्थापना उत्तर या पूर्व दिशा में होनी चाहिए, जिससे उसकी दृष्टि दक्षिण या पश्चिम की ओर रहे "पूर्वोत्तरेण प्रतिष्ठाप्य प्रतिमां सदा शुभां"[16] यह दिशा धार्मिक अनुष्ठानों में शुभ मानी जाती है और इससे भवन में सकारात्मक ऊर्जा का संचार होता है।

वास्तुशास्त्र में प्रतिमा निर्माण के लिए विभिन्न सामग्रियों का उपयोग किया जाता है, जैसे पत्थर, धातु, लकड़ी, और मिट्टी। "मयमतम्" में प्रतिमा निर्माण में उपयोग की जाने वाली सामग्री का विस्तृत वर्णन मिलता है- "शिलया वा धातुभिश्च, काष्ठेन मृत्तिकया च प्रतिमा निर्मितव्या"[17] यहाँ प्रतिमा निर्माण के लिए शिला (पत्थर), धातु, काष्ठ (लकड़ी), और मृत्तिका (मिट्टी) का उपयोग करने का निर्देश दिया गया है। विभिन्न देवताओं की प्रतिमाएं विभिन्न सामग्रियों से बनाई जाती हैं, जिनका आध्यात्मिक महत्त्व होता है।

प्रतिमा निर्माण के बाद उसकी प्रतिष्ठा (स्थापना) का विशेष धार्मिक और आध्यात्मिक महत्त्व होता है। प्रतिष्ठा के समय वैदिक मंत्रों और यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है। "समरांगणसूत्रधार" में प्रतिमा की प्रतिष्ठा के अनुष्ठानों का उल्लेख मिलता है- "प्रतिष्ठायां यज्ञकर्मणा देवतां प्रतिमायां प्रविष्टं मन्यते"[18] यहाँ प्रतिमा में देवता का प्रवेश यज्ञ और मंत्रों के द्वारा किया जाता है, जिससे वह साधारण मूर्ति नहीं रहती, बल्कि उसे देवता का प्रतीक माना जाता है।

निष्कर्ष -

वास्तुशास्त्र में प्रतिमालक्षण का अत्यन्त महत्त्व है। प्रतिमा का आकार, अनुपात, मुद्रा, दिशा, और सामग्री सभी का धार्मिक, आध्यात्मिक और वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से विशेष महत्त्व है। इन सिद्धांतों का पालन करके निर्मित प्रतिमाएं न केवल वास्तु के नियमों के अनुरूप होती हैं, बल्कि धार्मिक आस्था और विश्वास को भी सुदृढ़ करती हैं।

वास्तुशास्त्र में प्रतिमालक्षण एक अत्यंत विशिष्ट और महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें धार्मिक, सांस्कृतिक, और शिल्प की दृष्टि से प्रतिमाओं के निर्माण के लिए गहन निर्देश दिए गए हैं। यह केवल कला का हिस्सा नहीं है, बल्कि एक शास्त्र है जो आध्यात्मिकता और स्थापत्य की सूक्ष्मताओं को जोड़ता है। भारतीय परंपरा में देवप्रतिमाओं का निर्माण केवल धार्मिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नहीं किया जाता, बल्कि उनमें शिल्पकला और विज्ञान का संगम होता है। इसके अंतर्गत हर मूर्ति में देवता के आध्यात्मिक गुणों को प्रकट करना आवश्यक होता है, जिसे विभिन्न शारीरिक आकृतियों, मुद्राओं, और अंगों के अनुपात के माध्यम से सजीव किया जाता है।

प्रतिमालक्षण के अंतर्गत माप, मुद्रा, और स्वरूप का निर्धारण न केवल देवता की आंतरिक शक्तियों को जाग्रत करने के लिए होता है, बल्कि यह भक्तों की आस्था और आध्यात्मिक यात्रा को भी दिशा प्रदान करता है। जब शिल्पकार प्रतिमा का निर्माण करता है, तो वह केवल एक भौतिक वस्तु नहीं बनाता, बल्कि वह उस देवता की जीवंतता का अनुभव करने के लिए एक माध्यम तैयार करता है। यही कारण है कि हर प्रतिमा में अंगों का अनुपात, चेहरे का भाव, और मुद्रा का ध्यान रखा जाता है ताकि वह देवता की विशिष्ट विशेषताओं को भली-भांति दर्शा सके।

इसके अतिरिक्त, प्रतिमालक्षण में केवल शारीरिक संरचना का ध्यान नहीं रखा जाता, बल्कि इस प्रक्रिया में ऊर्जा और स्थान की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वास्तुशास्त्र के सिद्धांतों के अनुसार, मूर्तियों की स्थापना और उनका स्थान भी अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। सही स्थान और दिशा में स्थापित प्रतिमा सकारात्मक ऊर्जा का संचार करती है, जिससे उपासक को मानसिक शांति और आध्यात्मिक संतुलन प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए, घर या मंदिर में रखी प्रतिमा का मुख किस दिशा की ओर है, यह भी उसके प्रभाव को बढ़ाने या कम करने में एक महत्वपूर्ण कारक होता है। प्रतिमा निर्माण की प्रक्रिया भी अत्यंत वैज्ञानिक और गूढ़ होती है, जिसमें विभिन्न धातुओं, पत्थरों, या अन्य सामग्रियों का प्रयोग किया जाता है। यह केवल सजावट या भौतिक आवश्यकताओं के आधार पर नहीं होता, बल्कि उन सामग्रियों का चयन उनके आध्यात्मिक प्रभावों को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। प्राचीन शिल्पकारों ने न केवल सौंदर्यशास्त्र, बल्कि ऊर्जा और ध्वनि विज्ञान के सिद्धांतों के अनुसार प्रतिमाओं का निर्माण किया। हर प्रतिमा अपने आप में एक ऊर्जा केंद्र बन जाती है, जो अपने आस-पास के वातावरण को प्रभावित करती है।

यह निष्कर्ष इस बात की ओर संकेत करता है कि वास्तुशास्त्र में प्रतिमालक्षण न केवल एक शिल्पकला है, बल्कि यह आध्यात्मिक और सांस्कृतिक जागरण का माध्यम भी है। आधुनिक युग में भी, जब हम तकनीकी और औद्योगिक प्रगति की ओर बढ़ रहे हैं, इस शास्त्र की नवीनता और प्रासंगिकता बनी हुई है। यह हमारे आंतरिक और बाहरी जीवन में संतुलन और समरसता लाने का एक सशक्त माध्यम है। वास्तुशास्त्र और प्रतिमालक्षण की यह परंपरा न केवल भारतीय शिल्पकला और स्थापत्य के उच्चतम रूप को प्रकट करती है, बल्कि इसके माध्यम से समाज को आध्यात्मिक दिशा और ऊर्जा प्रदान करने की क्षमता भी रखती है।

सन्दर्भसूची -

- [1] मयमतम्, अध्याय 35, श्लोक 7
- [2] मानसार, अध्याय 56, श्लोक 12
- [3] समरांगणसूत्रधार, अध्याय 45, श्लोक 5
- [4] मयमतम्, अध्याय 12, श्लोक 22
- [5] कौशिकसूत्र, अध्याय 9, श्लोक 15
- [6] मयमतम्, अध्याय 12, श्लोक 22
- [7] समरांगणसूत्रधार, अध्याय 50, श्लोक 10
- [8] मयमतम्, अध्याय 25, श्लोक 16
- [9] समरांगणसूत्रधार, अध्याय 70, श्लोक 5

- [10] मानसार, अध्याय 60, श्लोक 22
- [11] समरांगणसूत्रधार, अध्याय 75, श्लोक 20
- [12] मयमतम्, अध्याय 35, श्लोक 19
- [13] मयमतम्, अध्याय 35, श्लोक 7
- [14] मानसार, अध्याय 56, श्लोक 12
- [15] कौशिकसूत्र, अध्याय 9, श्लोक 15
- [16] समरांगणसूत्रधार, अध्याय 45, श्लोक 5
- [17] मयमतम्, अध्याय 12, श्लोक 22
- [18] समरांगणसूत्रधार, अध्याय 50, श्लोक 10

*शोध छात्र, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली।